eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

भारतीय सामाजिक संरचना में दलितों की स्थिति

[1]डॉ प्रीती तिवारी
[1]एसोसिएट प्रोफेसर (समाजशास्त्र), इंदिरा गांधी राजकीय महिला महाविद्यालय, रायबरेली उ0प्र0

Received: 13 July 2020, Accepted: 27 July 2020, Published on line: 30 Sep 2020

Abstract

प्रत्येक समाज में मुख्य रूप से दो वर्ग पाए जाते हैं एक संपन्न वर्ग जिसे पूंजीपति वर्ग,अभिजात वर्ग, उच्च वर्ग के नाम से जाना जाता है और दूसरा गरीब वर्ग, जिसे श्रमिक वर्ग, दुर्बल वर्ग, दलित वर्ग, कमजोर वर्ग या पिछड़े वर्ग के नाम से संबोधित किया जाता है। कमजोर वर्ग या दलित वर्ग का अध्ययन वर्तमान में अनेक दृष्टि से आवश्यक है। भारतीय संदर्भ में दलित वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शोषित एवं उपेक्षित रहा है। दलित वर्ग के अंतर्गत अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जनजातियां तथा कुछ अन्य पिछड़े हुए समूह आते हैं। दलित शब्द का प्रयोग उन जातीय समूहों के लिए किया जाता है जो वर्ण व्यवस्था से बाहर एवं हिंदू सामाजिक संरचना सोपान में सबसे निम्न स्थान रखते हैं। निम्नतम स्थान का आधार इनके उस व्यवसाय से जुड़ा है जिसे अपवित्र समझा जाता है। अपवित्र व्यवसाय के कारण इन जातियों को अछूत (अस्पृश्य) समझा जाता है। ब्रिटिश काल में अछूतों या अस्पृश्यों को दलित वर्ग के नाम से पुकारा गया। अस्पृश्य जातियों के नामकरण के संबंध में शुरू से काफी विवाद रहा है इन्हें अछूत, दलित, बाहरी जातियां, हरिजन एवं अनुसूचित जाति आदि नामों से संबोधित किया जाता रहा है। इनकी आर्थिक स्थिति के अत्यंत दयनीय होने के कारण इनके लिए अछूत शब्द के स्थान पर दलित वर्ग शब्द का प्रयोग किया गया। आर्य समाज की मान्यता थी कि यह वर्ग अछूत न होकर दलित है क्योंकि इन्हें समाज ने दबाकर और सब प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा है। इनकी निम्न दशा के लिए यह स्वयं उत्तरदायी न होकर समाज उत्तरदायी है। वर्ष 1931 की जनगणना के पूर्व तक इनके लिए दलित शब्द का ही प्रयोग किया जाता था। इस जनगणना के समय जनगणना अधीक्षक ने दलित शब्द के स्थान पर बाहरी जातियां शब्द का प्रयोग किया। इस शब्द के प्रयोग का कारण यह था कि इन जातियों का भारतीय सामाजिक संरचना में कोई स्थान नहीं था। इनको सार्वजनिक स्थानों जैसे– मंदिरों में पूजा करना, उच्च वर्ग के साथ उठना बैठना, उनके साथ खाना पीना, एक तालाब में स्नान करना, ऊंचे स्वर में बात करना आदि की मनाही थी। निम्न सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति होने के कारण यह जातियां सदियों से भेदभाव एवं शोषण का शिकार होती रही है। संविधान में इन्हें अनुसूचित जाति के नाम से जाना जाता है। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या में 16.66 प्रतिशत या 20.14 करोड़ आबादी दलितों की है। इन्हें अब सरकारी आंकड़ों में अनुसूचित जातियों के नाम से जाना जाता है। दलितों की इतनी अधिक जनसंख्या की उपेक्षा करके सामाजिक एकता, समरसता, सामाजिक पुनर्निर्माण एवं प्रगति संभव नहीं है।अनुसूचित जाति की सबसे अधिक जनसंख्या उत्तर प्रदेश में है।

मूल शब्द– संरचना, सोपान, अस्पृश्य, अनुसूचित, पुर्ननिर्माण।

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

Introduction

दलित एक ऐसा शब्द है जिसे न तो संवैधानिक दर्जा प्राप्त है और न ही इसके प्रयोग की इजाजत। सबसे पहले ऋग्वेद में शूद्र शब्द का स्पष्ट उल्लेख पुरुष सूक्त में हुआ है इसमें लिखा गया है कि ब्राह्मणोस्य मुखमासीद बाहु राजन्यः कृतः। तैस्य यद् वैश्यः पद्मा शूद्रोःअजायतः। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली के समाजशास्त्र के प्रोफेसर विवेक कुमार के अनुसार दलित शब्द के प्रयोग का सबसे पहले विवरण वर्ष 1831 में ईस्ट इंडिया कंपनी के आर्मी अफसर जे जे मोल्सवर्थ द्वारा मिलता है। अंग्रेजी फौज के इस अफसर द्वारा एक मराठा इंग्लिश डिक्शनरी में इस शब्द का प्रयोग किया गया था। इसके अलावा दलित शब्द का प्रयोग महात्मा ज्योतिबा फूले ने भी किया था। दलित शब्द का संविधान में कोई जिक्र नहीं है। भारतीय संविधान में दलित शब्द के स्थान पर अनुसूचित जाति अनुसूचित/ जनजाति का प्रयोग हुआ है। उच्चतम न्यायालय ने भी दलित शब्द को असंवैधानिक घोषित किया। डॉ श्यौराज दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।" धीरेंद्र वर्मा द्वारा संपादित हिंदी साहित्य कोश के अनुसार "यह समाज का निम्नतम वर्ग होता है, जिसको विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवसाय के अनुरूप ही प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए दास प्रथा में दास, सामंतवादी व्यवस्था में किसान, पूंजीवादी व्यवस्था में मजदूर समाज का 'दलित वर्ग' कहलाता है।" माता प्रसाद ने दलित शब्द की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया है कि "शैक्षिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक दृष्टि से जो जातियां पिछड़ गई हैं या जिन्हें पिछड़े रहने को विवश कर दिया गया है वही दलित जातियां हैं।" दलितों के इतिहास के बारे में कुछ विद्वानों का यह मानना है कि आज से 4000 – 4500 वर्ष पूर्व सिंधु घाटी सभ्यता का उदय हुआ। यह सभ्यता बहुत विकसित मानी जाती थी। वर्तमान के ईरान, इराक, रूस और जर्मनी आदि जो उस समय मध्य एशिया कहा जाता था, वहां के लोग घुमक्कड़ व खानाबदोश थे, जिन्हें आर्य कहां जाता था। आर्य खाने की तलाश में उत्तर के रास्ते घूमते हुए भारत आए और यहां की संपन्नता देखकर यहीं बस गए। यहां के मूल शासकों पर आधिपत्य जमा कर उन पर शासन करने लगे। यह संघर्ष लगभग 500 वर्षों तक चला जिसे इतिहास में 'आर्य और अनार्य' युद्ध के नाम से जाना जाता है। युद्ध में पराजित अनार्यों को शूद्र की संज्ञा दी गई थी जो आज के वर्तमान समय में दलित जातियों में विभक्त हैं और दलितों के नाम से जाने जाते हैं।

भारतीय समाज की सामाजिक तथा पारिवारिक संरचना इससे संबद्ध संस्थाओं एवं समयुगीन संप्रदायों का एक संगठन है। प्राचीन वर्णाश्रमवद्ध संस्था के समन्वीकृत, सामंजस्यीकृत्य प्रक्रिया के रूप में जाति व्यवस्था ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, आचार प्रतिमानों तथा मानव भावनाओं को गुणात्मक एवं परिमाणात्मक स्तर पर भारतीय समाज को प्रभावित किया है। समाज शास्त्रियों के लिए विलक्षण, अकिंचन, आश्चर्यजनक आदि अन्वेषण के तथ्य रहे हैं। सामाजिक संरचना के रूप में जाति एक प्रबल सामाजिक संगठन तथा चिरकालिक सांस्कृतिक घटना है जिसमें हिंदू समाज, जातियों के अनेक समूहों में विभक्त हुआ है। इनकी मान प्रतिष्ठा, सामाजिक प्रस्थिति तथा पद के स्तर भी भिन्न भिन्न है। किसी भी जाति ने अपनी सामाजिक व्यवस्था को आदर्श नहीं माना, अधिक से अधिक

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

उसको स्वाभाविक माना है। इतिहास में किसी भी समाज ने जन श्रेणियों की संख्या को सीमित नहीं किया। प्राचीन धर्म शास्त्र ग्रंथों में कानून लोकतंत्र की दृष्टि से सबके लिए समान आधार पर आश्रित होकर जातीय दृष्टिकोण पर आश्रित थे। भारत में विभिन्न जातियों के संबंधों तथा जाति व्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों का कई समाजशास्त्री तथा मानवशास्त्री विद्वानों ने अध्ययन किया है। सामान्यतया, जाति व्यवस्था में परिवर्तन की यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है कि जातियां जाति संस्तरण में उच्च स्थान प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं। निम्न जातियां भी जाति व्यवस्था को समाप्त करने के बजाय द्विजों में सम्मिलित होकर उच्च स्थान प्राप्त करना चाहती हैं। श्री एम एल श्रीनिवास के अनुसार निम्न जातियां ब्राम्हण रीति–रिवाजों, प्रयासों तथा संस्थाओं को अपनाकर संस्कृतिकरण की प्रक्रिया द्वारा जाति व्यवस्था के अंतर्गत उच्च स्थान प्राप्त करने का प्रयत्न कर रही हैं। मरफी के अनुसार जातियां अपनी सापेक्ष स्थिति में सुधार लाने के लिए संघर्षरत हैं। भारतीय सामाजिक संरचना में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक है कि जाति व्यवस्था की संरचना और उसकी आधारशिला के विरुद्ध संघर्ष किया जाए। इस संबंध में लेविस ए. कोजर ने भी अपना मत व्यक्त किया है कि निम्न जातियों में शिक्षा की कमी के कारण ज्ञान का अभाव है अतः जाति व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक सामाजिक संघर्ष भी कमजोर है साथ ही सरकारी कार्यक्रम भी अप्रभावी ही साबित हो रहे हैं। दलित मानवीय प्रगति में सबसे पीछे पड़ा हुआ और पीछे धकेला गया सामाजिक वर्ग है। महाराष्ट्र के हिंदू समाज में महार, चमार, डोम इत्यादि जिन जातियों को गांव से बाहर रहने के लिए बाध्य किया गया और जिनसे सवर्ण समाज शारीरिक सेवाएं तो लेता रहा लेकिन जीवन आवश्यक प्राथमिक जरूरतों से भी उन्हें जानबूझकर वंचित रखा और पशुओं के स्तर से भी अधिक घृणित जीवन जीने के लिए बाधित करता रहा, उनको अछूत या दलित कहा गया। दलित लोग गांव में छप्पर डाल कर बाहर रहते थे यह लोग अपना मकान नहीं बना सकते थे। यह लोग भूमि के सिवा चारपाई या तख्त पर नहीं लेट सकते थे। इनकी स्त्रियां सोने चांदी के गहने नहीं पहन सकती थीं। इन लोगों से अत्यंत कठोर सेवा के काम लिए जाते थे और इन्हें समाज में सम्मान भी नहीं मिलता था। यदि कोई सवर्ण इन्हें छू जाता था तो उसे कपड़े सहित स्नान करना पड़ता था इसलिए इनको अछूत भी कहा गया था।

प्राचीन भारत में दलितों की स्थिति– दांते (1931) और आप्टे (1954) जैसे विद्वान यह मानते हैं कि शूद्र वर्ग ऋग्वेद में विद्यमान थे। यदि दलित शब्द का उल्लेख नहीं मिलता तो इसका अर्थ यह नहीं है कि दलित नहीं थे। ब्राह्मण ग्रंथों में कई बार दलित का उल्लेख ब्राह्मणों के साथ ही मिलता है। क्षत्रिय और वैश्यों का उल्लेख भी मिलता है। दलितों की निम्न आर्थिक स्थिति भी यही दर्शाती है कि समाज के संस्तरण में उनकी निम्न स्थिति थी। ऐसा कम देखने को मिलता है जहां दलितों के पास धन संपत्ति तथा पशुधन भी रहा हो। अधिकतर लोग भूमिहीन, खेतिहर मजदूरया घरेलू नौकरों की तरह काम करते थे। एक वाक्य में कहें तो दलितों को अपना जीवन निर्वाह केवल उच्च वर्गों की सेवा करके करना पड़ता था। अस्पृश्यता के पीछे अपवित्रता का विचार था। पवित्रता के विचार के संदर्भ में घुरिए ने कहा है, "800 ईसा पूर्व न केवल घृणित व पतित चडांलो में बल्कि समाज की चतुर्थ व्यवस्था दलितों में भी संस्कारिक पवित्रता एवं इसका कार्य रूप प्रचलन में था।" डॉ भीमराव अंबेडकर ने कहा था," यदि मानव विज्ञान ऐसा विज्ञान है जिस पर लोगों की प्रजाति निर्धारण के लिए निर्भर

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

किया जा सकता है तब तो हिंदू समाज के विविध स्तरों मानवमिति का अनुप्रयोग यह सिद्ध करता है कि अस्पृश्य व्यक्ति, आर्य व द्रविड़ प्रजातियों से विभिन्न प्रजाति के सदस्य थे। हिंदू साहित्य में देवी देवताओं की भक्ति द्वारा मुक्ति पर बल दिया गया है। कर्म और धर्म का विचार निम्न जाति को नियंत्रण में रखने के लिए एक सुविधाजनक विचार था। दलितों पर ब्राम्हण काल से ही अनेक प्रकार के प्रतिबंध थे। उन्हें यज्ञशाला में जाने की अनुमति नहीं थी। दलितों द्वारा प्रयोग किए गए बर्तन कोई भी अन्य प्रयोग नहीं कर सकता था। मुस्लिम काल में दलितों पर कुछ प्रतिबंध लागू थे जैसे सूर्यास्त के बाद वह नगर में प्रवेश नहीं कर सकते थे क्योंकि उनकी छाया उच्च जातियों को अपवित्र कर सकती थी। गांव में उनके लिए कुएं अलग थे। प्राचीन काल में दलित जातियां अनेक सामाजिक व नैतिक निर्योग्यताओं की शिकार थी। इनमें से अनेक निर्योग्यताएं उच्च जातियों द्वारा परंपरागत तौर पर निर्धारित और सामाजिक तौर पर लागू की गई। जहां जाति व्यवस्था वर्ण व्यवस्था की देन है वही दलित समस्या जाति व्यवस्था की देन है। वैदिक काल की ऐतिहासिक, सामाजिक संरचना से लेकर महाकाव्यों के युग विशेषकर रामायण, महाभारत काल तक यद्यपि समृद्ध एवं कमजोर जन समूहों का समावेश तब भी रहा, किंतु ऐतिहासिक काल में जन्मजात, जटिल रूढ़ियों द्वारा प्रतिबद्ध, स्थिर जाति व्यवस्था की जगह गतिशील एवं वैयक्तिक कौशल, गरिमा गुण प्रधानता पर आधारित वर्ण व्यवस्था के प्रभुत्व पर सामाजिक व्यवस्था का गतिशील रूप कायम था। तथाकथित कमजोर वर्ग की दलित और अमानवीय स्थिति नहीं थी और न ही वह तात्कालिक समाज के लिए समस्या स्वरूप रहा क्योंकि निम्न एवं दलित वर्ग भी गुण, कौशल और दक्षता ग्रहण कर सामाजिक सुविधाओं को ठीक से प्राप्त करता रहा। मध्यकालीन भारत में दलितों की स्थिति– मध्य काल के दौरान भारतीय जाति व्यवस्था का विस्तृत एवं जटिल स्वरूप उभर चुका था। बाबर से लेकर औरंगजेब तक के शासनकाल में भी जाति व्यवस्था के लिए एक अंधकार युग था। हत्या, लूट, निर्दयता, शोषण, बलात्कार, बलात धर्मांतरण और निरंकुशता भारतीय जनजीवन की नियति बन चुके थे। ऐसी स्थिति में जहां उच्च, संभ्रांत, समृद्धि एवं सामंती व्यवस्था से जुड़े स्थानीय राजा, जागीरदार और जमींदार मुगल आक्रामकों और सुल्तान के संत्रास और शोषण के शिकार हुए, वहीं निर्धन, निरीह, दस्तकार और श्रम से जुड़े दीन हीन एवं दलित अवस्था वाले तथाकथित निर्बल और कमजोर वर्ग के समुदाय की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई। इसके लिए तात्कालिक सामाजिक संरचना, उसकी अर्थव्यवस्था एवं राजव्यवस्था जिम्मेदार है। मध्यकाल का मुक्ति आंदोलन 15 वीं 16 वीं सदी में मुख्यतः हिंदू मुस्लिम एकता और समन्वय के आशय से अग्रसर हुआ। इसके अग्रदूत रामानुज, रामानंद, वल्लभाचार्य, कबीर, नानक, चैतन्य, रविदास, तुकाराम जैसे लोग थे। इनके आंदोलन का मुख्य उद्देश्य अमानवीय जीवन निर्वाह करने को बाध्य दलितों को भारतीय समाज और संस्कृति की मुख्यधारा से जोड़ना था। इनके प्रयासों से दलितों की स्थिति में धीरे–धीरे सुधार आने होने लगा। शिक्षा के प्रसार स्वरूप नागरिक अधिकारों की मांग का इन दलितों पर व्यापक प्रभाव पड़ा और दलितों ने अपनी मुक्ति के लिए स्वयं पहल की।

आधुनिक भारत में दलितों की स्थिति– स्वतंत्रता से पूर्व– आद धर्म आंदोलन (पंजाब), नाम शूद्र आंदोलन (बंगाल), द्रविड़ आंदोलन (तमिलनाडु),आंध्र आंदोलन (आंध्र प्रदेश), हिंदू महासभा आंदोलन (कानपुर) आदि किसी न किसी रूप में डॉ भीमराव अंबेडकर से जुड़ गए। सामाजिक समानता का

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

जो संघर्ष बुद्ध ने 2500 वर्ष पूर्व छेड़ा था वह कालांतर में दब भले गया था किंतु मरा नहीं था। आधुनिक युग में डॉ अंबेडकर ने उसे पुनर्जीवित कर दिया। डॉ अंबेडकर ने दलितों को राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक आजादी दिलाने के लिए वर्ष1942 में 'ऑल इंडिया शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' की स्थापना की। दलितों के सम्मान की रक्षा के लिए उन्होंने दलित युवकों का 'समता सैनिक दल' बनाया और उन्हें शिक्षा से जोड़ने के लिए 'पीपुल्स एजुकेशन सोसाइटी' की स्थापना की। उन्होंने मुंबई में सिद्धार्थ कालेज तथा औरंगाबाद में विशेषकर दलितों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु मिलिंद कॉलेज की स्थापना की। अंबेडकर के दलित आंदोलन की दो मुख्य धाराएं थी 1– सामाजिक समानता के लिए संघर्ष 2– सांस्कृतिक दासता से ब्रिटिश शासन काल में हुए भौतिक विकास, शेष विश्व से हमारे संपर्क, सरकार की प्रशासकीय व सामाजिक आर्थिक नीतियों तथा कुछ वैधानिक उपायों का हमारे धार्मिक विचारों, प्रथाओं एवं समाज की जाति संरचना पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा। जाति निर्योग्यता उन्मूलन अधिनियम (1850), विधवा पुनर्विवाह (1856) तथा विशेष विवाह अधिनियम (1872)ने भी दलितों को मुख्यधारा से जोड़ने का प्रयास किया। अनेक संतों और महापुरुषों ने दलित मुक्ति के लिए जो आंदोलन चलाए वह सामाजिक सुधारों के रूप में परिणित हुए। सुधार आंदोलनों ने एक ओर पाखंड, आडंबर और कर्मकांड का विरोध किया तो दूसरी और जाति– पांति तथा अन्य मध्ययुगीन कुमान्यताओं का जो राष्ट्रीय एकता व प्रगति के मार्ग में बाधक थी,का विरोध किया।बंगाल के राजा राममोहन राय ने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की, जिसके द्वारा सामाजिक बुराइयों का विरोध किया और विधवाओं के सती होने के विरुद्ध आंदोलन कर उनका सती होना रोका गया। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व महात्मा गांधी के हाथ में आ गया। उन्होंने अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन और हरिजन उत्थान को राष्ट्रीय आंदोलन का अभिन्न अंग बना दिया। वह दलित समस्या का हल सवर्णों व हरिजनों में विरोध व संघर्ष के द्वारा नहीं अपितु उनमें आपसी सूझबूझ बढ़ाकर व हृदय परिवर्तन कर करना चाहते थे। गांधीजी ने अछूतों का नाम 'हरिजन' रखा। न्यायाधीश रानाडे द्वारा सन् 1849 में महाराष्ट्र में प्रार्थना सभा की स्थापना का उद्देश्य अंतर्जातीय सहभोज, अंतर्जातीय विवाह, विधवा पुनर्विवाह आदि था। बाद में इसी प्रार्थना समाज से भारत सेवक समाज का जन्म हुआ जिसने समाज सुधार को प्रोत्साहन देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

डी एन मजूमदार ने सन 1940 में दलित जातियों की भूमिका पर कहा कि यह जातियां सब राज्यों में दलित नहीं है। एक ही जाति एक क्षेत्र में दलित हो सकती है लेकिन दूसरे क्षेत्र में सामाजिक और राजनीतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित नहीं भी हो सकती है। मध्यप्रदेश में एक ही जाति के अधिकार व सामाजिक निर्योग्यताएं आसपास के जिलों में भी अलग–अलग होती है। जहां दलित जाति के सदस्यों की संख्या कम होती है, वहां निर्योग्यताओं में कठोरता है तथा जहां दलित जाति के सदस्यों की संख्या अधिक है और वह बलवान होते हैं वहां निर्योग्यताएं शिथिल होती जाती हैं। जहां उच्च जाति के सदस्यों की संख्या अधिक नहीं है और अधिकतर जनसंख्या दलितों की है वहां समारोह संबंधी पवित्रता का स्तर भी कम हो जाता है। महात्मा गांधी के प्रोत्साहन से वर्ष 1922 में बारदोली कार्यक्रम में भी उद्देश्य अस्पृश्यों का उत्थान ही था। सन् 1932 में दलितों की सामाजिक निर्योग्यताओं के

eISSN 2581-8996
[Date]
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 3, Issue 02, July 2020

निवारण हेतु दलित सेवक संघ का गठन किया गया था। इन सब आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि दलित अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हुए और उनमें सामाजिक बदलाव की भावना आने लगी।

स्वतंत्रता के पश्चात दलितों की स्थिति–स्वतंत्रता के पश्चात दलित जातियों के सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक स्तर में उन्नयन के लिए अनेक संवैधानिक कदम उठाए गए। अस्पृश्यता निवारण, सामाजिक अन्याय तथा विभिन्न प्रकार के शोषण से बचाव, धार्मिक संस्थाओं में सभी व्यक्तियों का प्रवेश, कुओं, तालाबों, सार्वजनिक स्थलों, रेस्टोरेंट तथा दुकानों में प्रवेश वर्जनाओं का निवारण, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश प्राप्त करने का अधिकार, राज्य कोष से सहायता राशि प्राप्त करना, सेवाओं में उनके लिए आरक्षण देने की अनुमति, पंचायतों, विधानसभाओं लोकसभा में उन्हें समुचित प्रतिनिधित्व प्रदान करना, कमजोर वर्गों के कल्याण हेतु सलाहकार समितियों तथा विभागों की स्थापना आदि कल्याणकारी योजनाएं बनाकर सरकार ने उनको समाज के मुख्यधारा में सम्मिलित करने का ईमानदार प्रयास किया है। दलितों के हितों की रक्षा के लिए 'अनुसूचित जाति एवं जनजाति राष्ट्रीय आयोग' एवं राज्यों में भी इस आयोग की स्थापना की गई। भारतीय संविधान में कमजोर वर्गो के कल्याण के लिए अनेक प्रावधान किए गए। संविधान के अनुछेद 15(1) मे है कि राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान अथवा इनमें से किसी एक के आधार पर कोई विभेद नहीं होगा। अनुछेद 17 में अस्पृश्यता का अन्त की बात कही गई है। अनुछेद 19 के आधार पर अस्पृश्यों की व्यवसायिक निर्योग्यताओं को समाप्त किया जा चुका है। अनुछेद 25 में हिंदूओं के सार्वजनिक धार्मिक स्थानों के द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिए गए। अनुछेद 46 में कहा गया है कि राज्य कमजोर वर्गो जिनमे अनुसूचित जातियां तथा आदिम जातियां आती है, उनकी शैक्षणिक कथा आर्थिक हितों की रक्षा करेगा और सभी प्रकार के सामाजिक अन्याय शोषण से उनको बचाएगा। अनुछेद 335 राजकीय सेवाओं मे नियुक्तियों मेंअनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा आदिम जातियों के हितों का ध्यान रखा जाए। इसके अतिरिक्त इनके लिए अनेक संवैधानिक उपबंध की गए हैं।

अंत में हम कह सकते हैं कि अनुसूचित जातियों में प्रस्थिति संबंधी परिवर्तन आए हैं, अधिकारों के प्रति चेतना आई है, आकांक्षाओं का स्तर बढ़ा है। स्त्रियां तक नौकरी करने लगी है, राजनीतिक प्रकियाओं में लोगों की रूचि बढ़ी है, उन्होंने नेतृत्व के पद संभाले है। आज भारतीय सामाजिक संरचना में जाति के आधार पर भेदभाव समाप्त हो चुका है और दलित जातियां समाज की मुख्यधारा में सम्मिलित हो चुकी हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची–

राजेश पांडे (2001) भारतीय महिलाओं के संवैधानिक अधिकार, देशभक्त प्रकाशन लखनऊ
डॉ मोहम्मद अबीर उद्दीन (2011) दलित चेतना और भारतीय समाज, राज पब्लिकेशंस
शैलेंद्र मौर्य (2014) भारत में महिला मानवाधिकार प्रमुख चुनौतियां, पॉइंट पब्लिकेशंस
मुन्नी चौधरी (2014) दलितों की दलिताई, मनीष पब्लिकेशंस
एस एम माइकल (2015) आधुनिक भारत में दलित दृष्टि और मूल्य, सेज पब्लिकेशंस
जी एस घुरिये, भारत में जाति एवं प्रजाति, सेज पब्लिकेशंस
डॉ दुर्गा दास बसु, भारत का संविधान एक परिचय